इब्राहिम अलकाज़ी : पर्दा गिरता है

अमितेश कुमार

बात 1964 की है जब कलकत्ता में रंग समूह अनामिका कला संगम द्वारा आयोजित राष्ट्रीय नाट्य समारोह के परिसंवाद में 'नाटक और निर्देशक' विषयक सत्र की अध्यक्षता एक 39 साल का व्यक्ति कर रहा था। बलराज साहनी, पृथ्वीराज कपूर, जैसे दिग्गज इस सत्र के मुख्य वक्ताओं में से थे और शंभू मित्र मुख्य अतिथि। व्यक्ति ने आख़िर में अपने अध्यक्षीय वक्तव्य में आत्मविश्वास से भरी घोषणा की कि उसके द्वारा निर्देशित *अंधा युग* और *आषाढ़ का एक दिन* को राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय (आगे रानावि) में ऐसी शैली में प्रस्तुत किया गया है जिसकी रंगमंच में आगे चलकर एक परंपरा बनेगी और इससे हिंदी रंगमंच और नाटककार गौरवान्वित होगा। उस व्यक्ति के अध्यक्षीय भाषण में गहराई, अंतर्दृष्टि और भविष्यमुखी स्पष्टता थी। इस व्यक्ति को रानावि का निदेशक बने हुए अभी बस दो साल हुए थे लेकिन उसके इरादे की झलक इस भाषण में दिख रही थी। वह व्यक्ति थे इब्राहिम अलकाज़ी जो भारतीय रंगमंच में जीते जी ही एक किंवदंती बन गए थे। जिसको रंगमंच की हर पीढ़ी ने सुना,

और उन्हें अपने नज़दीक पाया, बिना उन्हें या उनका काम देखे जबकि वो रंगमंच 1977 में ही छोड़ गए थे और नब्बे के दशक में एक छोटे वक़्फे के लिए ही वापसी की थी। 4 अक्टूबर, 2020 को जब इस किंवदंती ने आख़िरी साँस ली तो सही मायनों में एक युग का समापन हुआ और ऐसे युग का, जिसका अधिकांश उनके द्वारा निर्मित किया गया था। आधुनिक रंगमंच पर प्रस्तुति और प्रशिक्षण को पेशेवर रुख़ उन्होंने ही प्रदान किया और आधुनिक भारतीय रंगमंच को आत्मविश्वास प्रदान किया।

इब्राहिम अलकाज़ी का जन्म 18 अक्टूबर, 1925 को हुआ था। पिता एक व्यापारी थे और अरब से उनका ताल्लुक़ था, माता कुवैत से थीं। पुणे के जिस सेंट विंसेंट स्कूल में उनकी पढ़ाई हुई थी वहीं पर रंगमंच का बीज उनमें पड़ा जो मुंबई में सेंट ज़ेवियर्स कॉलेज में शिक्षा-दीक्षा के दौरान और विकसित हुआ। इन्हीं दिनों ये सुल्तान पद्मसी के संपर्क में आए जो मुंबई में अंग्रेज़ी भाषा में प्रयोगधर्मी रंगमंच समूह द *थिएटर* ग्रुप के सूत्रधार थे। सुलतान पद्मसी का असमय देहांत हो गया था। 1948 में रंगमंच में विधिवत् प्रशिक्षण के लिए अलकाज़ी लंदन चले गए, दाख़िला *ब्रिटिश ओल्डविक थिएटर* में लेना चाहते थे लेकिन रॉयल एकेडमी ऑफ़ ड्रामेटिक आर्ट्स (आगे राडा) में लेना पड़ा जहाँ इन्होंने अभिकल्पना में विधिवत प्रशिक्षण लिया और प्रशिक्षण के दौरान ही तय किया कि उनको भारत लौटना ही है। भारत लौटने के बाद 1951 में वापस द *थिएटर* ग्रुप से जुड़े। 1954 में अलकाज़ी ने महसूस किया कि इस समूह के लोगों की रुचि रंगमंच को शौक़िया स्तर पर ही जारी रखने की है जबकि अलकाज़ी इसमें एक पेशेवर अभिवृत्ति लाना चाहते थे। उस समय तक इस समूह के लिए रंगमंच शौक़िया काम था जिसे बाक़ी कामों के साथ किया जाना था लेकिन अलकाज़ी चाहते थे कि रंगमंच को अन्य कामों की तरह ही पेशेवर तौर पर किया जाए इसलिए इसे वह पूरा समय देना चाहते थे।

इस दौरान अलकाज़ी बंबई के प्रोग्रेसिव आर्ट्स ग्रुप से भी जुड़े थे। एफ़.एन. सूज़ा, एम.एफ़. हुसेन जैसे चित्रकारों से संपर्क था, ख़ुद भी चित्रकार थे लेकिन उन्होंने रंगमंच में रहने का फ़ैसला किया था। उनकी रंगभाषा पर चित्रकला के प्रभाव को आलोचकों ने दर्ज किया है। अलकाज़ी ने महसूस किया कि रंगमंच से कोई भी, नाटककार, अभिनेता, अभिकल्पक, निर्देशक आदि किसी भी रूप में शामिल होना चाहता है तो उसे प्रशिक्षण लेना चाहिए। द *थिएटर* ग्रुप में इस काम के लिए जगह न देखकर उन्होंने 1954 में थिएटर यूनिट स्कूल ऑफ़ ड्रामेटिक आर्ट्स का गठन किया जिसके अंतर्गत नाटकों का निर्देशन किया और रंगकर्मियों को प्रशिक्षण दिया। 1962 में रानावि का निदेशक पद स्वीकार करने पर अलकाज़ी दिल्ली चले आए लेकिन मुंबई में अपने रंगकर्म की छाप वह छोड़ चुके थे। अलकाज़ी ने मुंबई में मुख्यत: अंग्रेज़ी भाषा का रंगकर्म किया और सोफ़ोक्लीज़, मॉलियर, लोर्का, जॉर्ज बर्नार्ड शॉ, ज्यां अनूई , हेनरिक इब्सन, आर्थर मिलर, टी.एस. इलियट, टेनेसी विलियम्स, सैमुअल बेकेट जैसे नाटककारों के नाटकों का मंचन किया। दिल्ली आने के बाद उनकी एक अलग यात्रा शुरू हुई। आते ही प्रस्तुति के लिए उन्होंने पहला नाटक चुना, मोहन राकेश का *आषाढ़ का एक दिन*।

रानावि का निदेशक पद का प्रस्ताव अलकाज़ी ने पहली बार में ठुकरा दिया था।

1954 में ही भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय ने उन्हें रंगमंच के एक राष्ट्रीय प्रशिक्षण संस्थान की परिकल्पना के लिए आमंत्रित किया था, इस संस्थान में प्रधानमंत्री नेहरू की भी रुचि थी। अलकाज़ी ने इसकी परिकल्पना तैयार करके सरकार को दे दी। सरकार की तरफ़ से उन्हें संस्थान का नेतृत्व करने का प्रस्ताव दिया गया। इस समय उनकी आयु महज उनतीस साल थी। और उन्हें लगता था कि वह अभी इस पद के

लिए तैयार नहीं है। सात साल बाद उन्होंने इस प्रस्ताव को मंजूर किया, तब तक वे ख़ुद को राष्ट्रीय भाषा में और राष्ट्रीय स्तर पर काम करने के लिए तैयार कर चुके थे। रानावि का निदेशक रहते हुए उन्होंने इसे अंतरराष्ट्रीय मानकों के अनुकूल गढ़ा और ऐसे स्नातक तैयार किए जिस पर संसार का कोई भी रंगमंच गर्व कर सकता है। उन्होंने रानावि को भारतीय रंगमंच के केंद्र में भी स्थापित कर दिया।

इब्राहिम अलकाज़ी 1962 से 1977 तक रानावि के निदेशक पद पर रहे और यहाँ कई ज़िम्मेदारियाँ एक साथ निभाईं। वो अध्यापक थे, निर्देशक थे, अभिकल्पक थे, वस्त्र विन्यास भी करते थे, रंगकर्म के हर क्षेत्र पर नज़र रखने के साथ ही छात्रों की तैयारी पर भी नज़र रखते थे। छात्र पढ़ क्या रहे हैं, उनका अनुशासन क्या है? वह दिख कैसे रहे हैं? उनको क्या चुनना चाहिए अभिनय कि निर्देशन? कब उन्हें शिक्षक के निर्देश से बाहर निकल कर अपनी स्वतंत्र भूमिका की तलाश करनी चाहिए? इन सब का ध्यान रखने वाले अलकाज़ी रानावि छात्रों के बीच 'चचा' के नाम से जाने गए, बंबई में उनके साथी उन्हें 'एल्क' कहते थे।

इब्राहिम अलकाज़ी ने रानावि का निदेशक पद ग्रहण किया तो उनके पास राष्ट्रीय रंगमंच का एक ख़ाका तैयार था जिसमें राष्ट्रीय की प्राप्ति के लिए स्थानीय विविधता को बिल्कुल अनदेखा नहीं किया गया था। इसमें केंद्र और राज्य दोनों ही द्वारा संचालित रंगकेंद्रों की परिकल्पना की थी। अलकाज़ी इस परिकल्पना में प्रशासनिक, आर्थिक विवरण देते हैं और पेश आने वाली दिक़्क़तों से भी आगाह करते हैं। इस परिकल्पना की एक शाखा के रूप में ही उन्होंने रानावि का

1962 में रानावि का निदेशक पद स्वीकार करने पर अलकाज़ी दिल्ली चले आए लेकिन मुंबई में अपने रंगकर्म की छाप वह छोड़ चुके थे। अलकाज़ी ने मुंबई में मुख्यत: अंग्रेज़ी भाषा का रंगकर्म किया और सोफ़ोक्लीज़, मॉलियर, लोर्का, जॉर्ज बर्नार्ड शॉ, ज्यां अनूई , हेनरिक इब्सन, आर्थर मिलर, टी.एस. इलियट, टेनेसी विलियम्स, सैमुअल बेकेट जैसे नाटककारों के नाटकों का मंचन किया।

संचालन किया। संस्थान को लेकर अलकाज़ी की अवधारणा में एक औदात्य है। वह कहते हैं कि 'कोई भी संस्थान हमेशा जीवित नहीं रहता लेकिन जब तक जीता है राष्ट्र की सोच को आकार देता है, यह उसकी आकांक्षा का प्रतीक हो सकता है और युग की आत्मा को सँजोए रहता है। और यहाँ तक कि अपने पतन में भी अतिप्राचीन अतीत के फलदाई वृक्ष की तरह अपने सौंदर्य की अवर्णनीय आभा बिखेरता है। अपने अवश्यंभावी मृत्यु में भी यह प्रेरक बना रह सकता है।' अलकाज़ी ने पंद्रह सालों तक रानावि को इसी उद्देश्य से चलाया। रानावि के अंतर्गत स्थापित रंगमंडल भी उनकी ही परिकल्पना का प्रतिफल था। जिसने व्यावसायिक रंगमंच संचालन का एक आदर्श स्थापित किया, इसकी प्रस्तुतियाँ भारतीय रंगमंच में प्रेरणा और चर्चा का केंद्र बन गईं।

इब्राहिम अलकाज़ी यह महसूस करते थे कि रंगमंच में किसी भी नई प्रतिभा को रंगमंच में प्रवेश से पहले कुछ बुनियादी प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। अन्यथा जैसा कि अधिकतर जगहों पर हुआ है, रंगमंच हमेशा शौक़िया स्तर पर ही रहेगा और इसे शौक़िया स्तर से ऊपर उठ कर कठिन कार्य करना होगा। राडा से लौटने के बाद अलक़ाजी बंबई में थिएटर यूनिट के अंतर्गत प्रशिक्षण की भी शुरुआत करते हैं। उनकी स्पष्ट मान्यता है थी कि उम्दा क़िस्म का रंगमंच तैयार और अनुशासित अभिनेताओं के बिना संभव नहीं। राडा में अलकाज़ी ने सीखा कि रंगमंच में क्या नहीं करना चाहिए। उन्होंने महसूस किया कि कोई भी संस्थान वैसा प्रशिक्षण नहीं दे सकता जैसा आप चाहते हैं। आपको अपना प्रशिक्षण स्वयं करना होता है। यहाँ यह सवाल पूछा जा सकता है कि फिर प्रशिक्षण और संस्थान क्यों? अलकाज़ी उत्तर देते हैं कि अतीत के प्रवाह के रूप में अपने समय को पहचानने, उनसे संवाद करने, अपने शरीर पर नियंत्रण करने, शिल्प के रूप में अभिनय को साधने, कला के रूप में इसका आनंद लेने के लिए प्रशिक्षण ज़रूरी है। अनुशासित रहने और माध्यम को समझने के लिए भी ताकि एक पेशेवर नजरिया विकसित हो।

अलकाज़ी को यह सवाल भी परेशान करता है कि अभिनेता की, ख़ासकर भारत में, प्रशिक्षण की क्या शैली होगी जहाँ रंगमंच की इतनी शैलियाँ हैं और दो शैलियों के बीच इतना बुनियादी अंतर है। जैसे, रस और द्वंद्व का जो संस्कृत और पाश्चात्य नाटकों में है। इसका जवाब भी वो देने की कोशिश करते हैं 'किसी एक समय में कुछ निश्चित मान्यताएँ सत्य मानी जाती हैं और इन मान्यताओं के आधार पर अभिनेता का प्रशिक्षण निर्मित करना चाहिए। कोई भी स्वीकार करेगा कि अभिनय एक कला है और रंगमंच में अभिनेता कलाकार। वह दूसरे की रचना का रचयिता और व्याख्याता दोनों है। उसका यंत्र उसका शरीर है, इसमें वह एक ही समय में रचयिता और रचना दोनों है। ये समझ कुछ हद तक अभिनेता के प्रशिक्षण की गुणवत्ता और प्रकार निर्धारित कर देते हैं।' अलकाज़ी की चिंता यह भी थी कि भारतीय रंगमंच की रंगभाषा क्या होगी? भारतीय रंगमंच और पाश्चात्य रंगमंच का संवाद कैसे होगा? आधुनिकता और परंपरा का संवाद कैसे होगा? और उन्हें रानावि में यह भी ध्यान में रखना था कि अलग-अलग भाषा, वर्ग, क्षेत्र, से संबद्ध छात्रों के लिए एक मुकम्मल प्रशिक्षण कैसे होगा?

इस क्रम में उन्होंने पूरा ध्यान रखा कि छात्रों का विश्व की प्रमुख रंग परंपराओं से व्यावहारिक

रूप से अवगत कराया जाए। इसके लिए उन्होंने ग्रीक, यथार्थवादी, फार्स, विसंगतवादी शैली के नाटकों की प्रस्तुतियाँ निर्देशित की। साथ ही ब्रेख़्त की शैली में प्रशिक्षित, जापान की काबुकी शैली में प्रशिक्षित निर्देशकों को रानावि में प्रशिक्षण और प्रस्तुति के लिए आमंत्रित किया। भारत की पारंपरिक रंग परंपरा के प्रशिक्षण के लिए यक्षगान, नौटंकी, भवई के प्रशिक्षकों के साथ छात्रों की कार्यशाला हुई और प्रस्तुति भी। अपने साथी अध्यापकों और दूसरे निर्देशकों को भी अलग-अलग रंग शैली में प्रस्तुति करने के लिए प्रेरित किया। सोजो सातो, कार्ल वेबर, रिचर्ड शेखनर, गिर्राज प्रसाद, शिवराम कारंत जैसे देसी-विदेशी विशेषज्ञ रानावि में उनके दौरान प्रशिक्षण और प्रस्तुति के लिए आए थे।

अलकाज़ी ने रानावि का जो पाठ्यक्रम बनाया था उसमें विविध शैलियों के नाटक खेलने होते थे, जैसे संस्कृत, समकालीन आधुनिक नाटक और पाश्चात्य नाटक। उनके आधुनिक अभिनेताओं के पास यह सुविधा नहीं है कि वे किसी एक शैली में प्रशिक्षित हों और एक ही शैली में काम करें। एक ही सत्र में वह कालिदास के नाटक में अभिनय कर रहा होता है तो ब्रेख़्त, शेक्सपीयर या मोहन राकेश के नाटक में भी। अलकाज़ी ने प्रशिक्षण के लिए वह शैलीगत विविधता तैयार की थी जिससे अभिनेता की शैली में एक लचीलापन आ जाए और वह सभी नाटकों में अपने को आत्मसात कर सके। भारत में विविधतापूर्ण शैलियों की उपस्थिति और पाश्चात्य प्रभावों से उपजे आधुनिक शैलियों में भी पर्याप्त विविधता देखते हुए प्रशिक्षण का यह तरीक़ा अद्वितीय था।

प्रशिक्षण की प्रक्रिया में सीखने से अधिक सीखे हुए को पीछे छोड़ने की भूमिका भी चलती है। क्योंकि अधिकांश प्रशिक्षु सिनेमाई अभिनय या तब के समय में पारसी या व्यावसायिक रंगमंच के अतिरंजित अभिनय को ही अभिनय मान के अभिनय सीखने चले आते थे। उनको इस अनुभव से आज़ाद कराना प्रशिक्षक के लिए बड़ी चुनौती थी। अलकाज़ी कहते हैं कि 'यह स्थिति नाट्य प्रशिक्षक के काम को अत्यंत कठिन कर देती है। अतः प्रशिक्षक को चाहिए कि वह अपने प्रशिक्षणार्थियों को पूरी तरह अनावृत कर दे, नवजात शिशु की तरह। उसके शरीर का पुनर्जन्म की तरह संस्कार करे। उसकी कुंठाओं और आंतरिक जटिलताओं से मुक्त कराने के लिए पूरा प्रयत्न करे। और फिर अभिनेताओं को अपने शारीरिक अवयवों, उनकी आंतरिक सुंदरता, अंतर्मन की अंतहीन छायाओं और प्रतिछायाओं को स्वयं समझना होगा।' रानावि के अभिनेता किसी एक क्षेत्र में विशेषज्ञता की उपाधि ज़रूर लेते थे लेकिन उनको रंगकर्म के हर क्षेत्र का गहन प्रशिक्षण दिया जाता था। रानावि की शुरुआती दौर की छात्र रहीं और प्रसिद्ध अभिनेत्री उत्तरा बावकर बताती हैं कि सारे विषय पढ़ाए जाते थे। हम सबको अलग-अलग नाटकों में मौक़ा मिलता था कि वस्त्र विन्यास करना है या लाइटिंग करनी है तो कैसे करनी है क्यों करनी है? किस तरह से हर नाटक के लाइट का अरेंजमेंट होता है? सिर्फ़ लाइट जलाने से थोड़े ही न नाटक बन जाता है। किस समय किन भावनाओं के साथ कैसे नाटक की लाइटिंग का संबंध बनता है। हर चीज़ का संबंध जिससे संपूर्णता में नाटक बनता है उन सारी चीज़ें को हमने रानावि में अलकाज़ी साहब से सीखा।

अलकाज़ी यह जान रहे थे कि वह अभिनेता को किसी निर्वात में नहीं गढ़ रहे उसे अपने समाज और संदर्भ से जुड़ना ही होगा और रंगमंच के साथ-साथ अन्य कलाओं के आस्वाद

के लिए ख़ुद को प्रशिक्षित करना होगा और अपने व्यक्तित्व को भी गढ़ना होगा। उनके लिए शिक्षा का पहला चरण है विद्यार्थी के व्यक्तित्व का एकीकरण जिसका लक्ष्य है उसके (विद्यार्थी) और उसके पर्यावरण के बीच सजीव रिश्ता क़ायम करना। कलाकार के लिए भ्रम नाम की कोई चीज़ नहीं है। पहली शर्त है विचार और अभिव्यक्ति की सफ़ाई। इसलिए उसे प्रशिक्षण के पहले चरण में उसकी कलास्वादन की क्षमता को बढ़ाया जाता है। रंगमंच जैसी मिश्रित कला के लिए यह ज़रूरी भी है कि चित्रकला, फ़ोटोग्राफ़ी नृत्य आदि अन्य कलाओं और अन्य विधाओं के प्रति अभिनेताओं की रुचि हो। अलकाज़ी रानावि में स्वयं इस बात का ध्यान रखते थे कि उनके विद्यार्थियों का समग्र विकास हो। और उनके लिए अभिनेता कैसा होना चाहिए? इसको अपने ही छात्र मनोहर सिंह के लिए कही बातों में पढ़ा जा सकता है।

'एक जिस्मानी एनर्जी जो थिएटर में वाइब्रेट करती है। एक रौशन ख़याल एनर्जी जो रौशनी की चादर की तरह बिछ जाती है। एक जज़्बाती और नफ़सानी एनर्जी जो उकसाती और पुचकारती है। एक इमैजिनेशन की एनर्जी जो नाटक को ऊँची सतह तक ले जाती है और उसके साथ दर्शकों को भी उन ऊँचाइयों तक ले जाती है।' अलकाज़ी अपने चिंतन में यह बराबर ख़याल रखते हैं कि वे कहीं भी ऐसी शब्दावली का इस्तेमाल न करें जिससे लगे कि वे अभिनेताओं के प्रशिक्षण में अपने विचार थोप रहे हैं। प्रशिक्षण के लिए भी वे 'नर्सिंग' शब्द का इस्तेमाल करते हैं जिसमें धीरे-धीरे अभिनय को तराशा जाता है। वे नहीं मानते कि प्रशिक्षण कुछ सिखा सकता है। उनके अनुसार प्रशिक्षक और प्रशिक्षु साथ-साथ सीखने की प्रक्रिया में ही सीख सकते हैं।

अलकाज़ी तैयारी को बहुत महत्त्व देते थे। नाटक निर्देशित करने से पहले उसकी पूरी परिकल्पना तैयार रहती थी। प्रस्तुति का कैनवास तय रहता था जिसमें रंग वह पूर्वाभ्यास के दौरान भरते। प्रसिद्ध रंग निर्देशक और अलकाज़ी के छात्र रहे देवेंद्र राज अंकुर लिखते हैं कि नाटक का पाठ करने से पहले उसकी पूरी संकल्पना उनके यहाँ मौजूद रहती थी। हर दृश्य के पीछे, हर गति के पीछे, हर उपकरण के पीछे यानि मंच पर उपस्थित किसी भी तत्त्व को लेकर एक ज़बरदस्त सोच, व्यवस्था, सलीक़ा और सफ़ाई मौजूद है। कई बार तो ये गुण कुछ 'आरोपित' से भी लगने लगते हैं, जब मंच पर उपस्थित जीवंत अभिनेता मात्र कठपुतली की तरह आचरण करते दिखाई देते हैं। फ़िल्म और रंगमंच के अभिनेता और निर्देशक नसीरुद्दीन शाह ने भी अपनी आत्मकथा में जिक्र किया है कि चित्रकला, स्थापत्य, संगीत, साहित्य और रंगमंच ने अलकाज़ी की प्रज्ञा को इस तरह बना दिया था कि उनको पता चल जाता था कि एक विशेष रचना से पूरी प्रस्तुति में क्या प्रभाव उत्पन्न हो सकता है। प्रस्तुति में मनचाहा नतीजा पाने के लिए अलकाज़ी अपने अभिनेताओं से ख़ूब मेहनत कराते थे, ख़ुद को उनके सामने नज़ीर रख कर। इसलिए नसीर कहते हैं कि उनकी परिकल्पना देख कर पता लगता है कि आख़िर रंगभाषा में 'चमक' का क्या मतलब है।

इब्राहिम अलकाज़ी पर आरोप लगता है कि उनका मानसिक गठन पश्चिमी था, इसलिए वह भारतीय रंगमंच को पाश्चात्य रंगभाषा में ढालना चाहते थे। अलकाज़ी निर्देशित नाटकों के अवलोकन में पाश्चात्य नाटकों की अधिक संख्या देख कर ऐसा लगता भी है लेकिन किसी

निर्णय पर पहुँचने से पहले कुछ तथ्यों का ध्यान भी करना चाहिए। अलकाज़ी रानावि में पाश्चात्य नाटक पढ़ाते थे इसलिए भी उनके द्वारा निर्देशित प्रस्तुतियों में पाश्चात्य नाटकों की संख्या अधिक है। *अनामिका* के जिस सत्र की चर्चा ऊपर हुई उसी सत्र में अलकाज़ी ने कहा था कि परिचालक यानि निर्देशक नाटककार का सेवक होता है। नाटककार की सीमा जहाँ ख़त्म होती है वहीं निर्देशक का काम शुरू होता है और निर्देशक का काम नाटक की व्याख्या है। वह यह भी कहते हैं कि उनके द्वारा चयनित नाटक का आधार है प्रासंगिकता और समकालीनता। कोई भी नाटक चाहे वो क्लासिक हो या संस्कृत या ग्रीक परंपरा का जब तक समकालीन संदर्भ में व्याख्यायित नहीं किया जाएगा प्रासंगिक नहीं

होगा। साफ़ है अलकाज़ी साहब की जो तैयारी थी उसमें उनको व्यवस्थित शब्द चाहिए थे यानि जिसे अंग्रेज़ी में वेल क्राफ़्टेड या वेल मेड नाटक कहते हैं वह। तभी वो अभिनेताओं को अपनी परिकल्पना के ढाँचे में खड़ा कर पाते। इसीलिए उनके नाटकों की सूची में अधिकतर सुपरिभाषित नाटक हैं जिनकी पश्चिम में समृद्ध परंपरा थी और भारतीय नाटककार अभी आधुनिक नाट्यलेखन के व्याकरण को साधना सीख रहे थे।

रानावि में पंद्रह सालों में उन्होंने विविध प्रकार की प्रस्तुतियाँ की जिससे उनकी रंग भाषा ने आकार लिया और विद्यार्थियों का भी गहन प्रशिक्षण हुआ। इस विविधता का अंदाज़ा नाटक की सूचियों से लगाया जा सकता है। *अभिज्ञान शाकुंतलम्* (कालिदास) और *मृच्छकटिकम्* (शूद्रक) जैसे संस्कृत नाटकों का मंचन किया तो नए भारतीय नाटककारों को भी जिनमें शामिल थे — *आषाढ़ का एक दिन* (मोहन राकेश), *अंधा युग* (धर्मवीर भारती), *तुग़लक* (गिरीश कर्नाड), *तीसवीं शताब्दी* (बादल सरकार), *सूर्यमुख* (लक्ष्मीनारायण लाल), *सुलतान रज़िया* (बलंवत गार्गी), *जाग उठा है रायगढ़* (वसंत कानेटकर)।

पाश्चात्य नाटकों में सोफ़ोक्लीज़ का *इडिपस* रेक्स और यूरीपिडीस का *ट्रोजन वुमन*

देवेंद्र राज अंकुर लिखते हैं कि नाटक का पाठ करने से पहले उसकी पूरी संकल्पना उनके यहाँ मौजूद रहती थी। हर दृश्य के पीछे, हर गति के पीछे, हर उपकरण के पीछे यानि मंच पर उपस्थित किसी भी तत्त्व को लेकर एक ज़बरदस्त सोच, व्यवस्था, सलीक़ा और सफ़ाई मौजूद है। कई बार तो ये गुण कुछ 'आरोपित' से भी लगने लगते हैं, जब मंच पर उपस्थित जीवंत अभिनेता मात्र कठपुतली की तरह आचरण करते दिखाई देते हैं।

जैसे ग्रीक क्लासिक, मॉलियर के व्यंग्य नाटक *बिच्छू, कंजूस, बीवियों का मदरसा,* शेक्सपीयर का *किंग लीयर, औथेलो* को प्रस्तुत किया। आधुनिक पाश्चात्य नाटकों में इब्सन (*गुड़िया घर, प्रेत*), चेखव (*थ्री सिस्टर्स*) जैसे यथार्थवादी, सैमुअल बैकेट के विसंगतवादी नाटक *वेटिंग फ़ॉर गोदो* के साथ ज्यां अनुई (*एंटिगनी*), स्ट्रिंडबर्ग (*द फादर*), पिरैंदलो (*सिक्स कैरेक्टर्स इन सर्च ऑफ़ द ऑथर*), लोर्का (*यर्मा*), ब्यूखनर (*दांतो'ज डेथ*), एडवर्ड बांड'स (*नैरो रोड टू द डीप नार्थ*), जॉन ऑसबार्न (*लुक बैक इन ऐंगर*), ज्यां पॉल सार्त्र (*मैन विदाउट शैडोज़*) को भी प्रस्तुत किया। स्पष्ट है कि पाश्चात्य नाटकों के चयन में भी शैलीगत विविधता है।

अलकाज़ी की मानसिक चेतना का गठन बहुसांस्कृतिक और सार्वदेशिक था। वे अरबी माँ-बाप की संतान थे जिसके घर में सिर्फ़ अरबी ही बोलने का नियम था लेकिन जिनकी माँ उर्दू, हिंदी, मराठी, गुजराती, पिता अरबी और टूटी-फूटी हिंदुस्तानी जानते थे। बचपन और किशोरावस्था बंबई के विविधतापूर्ण सामाजिक संरचना में गुज़रा था और वे ख़ुद स्वीकार करते थे कि उनके बनने में विभिन्न अस्मिताओं का योगदान है। वे विश्व की सभी रंग-परंपराओं से अवगत थे और उनके उदाहरण भी वहीं से आते हैं। वे बराबर यह ज़ोर देते हैं कि आधुनिक समय में कला ही वह स्थल है जहाँ देश की सीमाएँ धुँधली हो जाती हैं और कला की कोई भी प्रगति किसी देश की प्रगति न होकर समूची मानवता की प्रगति है और आधुनिक समय की माँग है कि एक अंतरराष्ट्रीय शैली विकसित हो जो एक ही समय में उतना ही देशी हो जितनी अंतरराष्ट्रीय। अलकाज़ी रंगमंच की किसी एक स्थिति को भारतीय स्थिति नहीं मानते। उन्हें पता था कि भारत में रंगमंच की तीन परंपराएँ हैं : एक संस्कृत की है जिसका संपर्क टूट गया है, और उसका जीवित साक्ष्य नाटकों के अतिरिक्त नहीं मिलता शैली और स्थापत्य के रूप में। दूसरा समकालीन रंगमंच जिसकी प्रेरणा पश्चिमी रंगमंच है और इन दोनों (संस्कृत और आधुनिक) के बीच इतनी चौड़ी खाई है कि जिसे पाटा नहीं जा सकता। अलकाज़ी लोक परंपरा को ऐसी कड़ी मानते हैं जो प्राचीन रीतियों और यथार्थवादी युक्तियों को जोड़ सकती है। उनके अनुसार भारतीय नाटककारों की असफलता का एक कारण है पाश्चात्य नाट्य शैलियों की कृत्रिम चमक और प्रस्तुति के लिए लोक को तिरस्कारपूर्ण ढंग से ख़ारिज करना। अलकाज़ी यह भी कहते हैं कि पारंपरिक शैलियों की प्रस्तुति से अधिक ज़रूरी है कि आधुनिक मंच के अनुकूल उनको कैसे बरता जाए इसका रास्ता खोजा जाना चाहिए जिसे नाटककार ही खोजेंगे।

अलकाज़ी एक ख़ास प्रकार की भारतीयता को ही भारतीय मानने से सहमत नहीं हैं। वे भारतीयता का अनुसंधान परंपरा से संवाद के साथ परंपरा से प्रश्न पूछने में भी करना चाहते हैं। ब्रेख़्त का अनुसंधान जब भारतीय रंगमंच में होता है तब अलकाज़ी भी उसको अपने निकट पाते हैं। लेकिन जिस ब्रेख़्त को, उस परंपरा को यथास्थिति में स्वीकार न करके उससे संवाद करता है और उसको अपने युग के अनुकूल व्याख्यायित भी करता है। स्पष्ट है कि परंपरा चाहे संस्कृत की हो, पश्चिम की हो या लोक की अलकाज़ी ऐसे ही स्वीकार नहीं करना चाहते। वह बार-बार युगानुकूलता को महत्त्व देते हैं और परंपरा से प्रश्न करने की बात करते हैं। ग़ौरतलब है कि भारतीय मनीषा की परंपरा इसी संवाद और विवाद में है, जहाँ कोई भी दर्शन कोई भी

शैली, कोई भी धर्म, कोई भी मत न प्रश्न से परे है और न ही सर्वमान्य। उनकी आलोचना भी परंपरा में मौजूद है। इस क्रम में अलकाज़ी सभी परंपराओं से सर्वश्रेष्ठ ग्रहण करने की वकालत भी करते हैं, और केवल भारतीय में ही नहीं यदि वह उन्हें जापान की काबुकी में मिलता है तो वहाँ से भी लेते हैं और शेक्सपीयर से भी। अलकाज़ी जवाहरलाल नेहरू द्वारा परिकल्पित उस भारत के विचार के प्रतिनिधि वाहक थे जिसमें किसी भी सांस्कृतिक, धार्मिक, वर्गीय पृष्ठभूमि का व्यक्ति भारत के विचार के साथ अपना लगाव स्थापित करके राष्ट्रवादी परियोजना में सम्मिलित हो सकता था इसको गढ़ने में अपना योगदान दे सकता था। उसे अपनी देशभक्ति लगातार प्रमाणित करने की ज़रूरत नहीं थी। लेकिन अलकाज़ी का निधन ऐसे समय में हुआ जिसमें बहुलतावादी और सांस्कृतिक विविधताओं के भारत का विचार ही ख़तरे में है।

1977 में छात्रों का उनके प्रति बढ़ता अविश्वास, कर्मचारियों का असंतोष और राजनीतिक परिस्थितियाँ बदलने से भी अलकाज़ी रानावि से इस्तीफ़ा दे देते हैं। यह ऐसा प्रसंग है जिसके बारे में उनके छात्र कम ही बात करना पसंद करते हैं। 1990 तक वह रंगमंच से दूर रहे और इस बीच में सिर्फ़ एक बार लौटे रानावि रंगमंडल की लंदन में होने वाली प्रस्तुति *तुग़लक* निर्देशित करने के लिए। 1990 में अलकाज़ी के शिष्य रामगोपाल बजाज, जो उस समय रानावि रंगमंडल के निर्देशक थे, ने उन्हें रंगमंडल के लिए नाटक निर्देशित करने के लिए आमंत्रित किया। उन्होंने तीन नाटक चुने जिसमें गिरिश कर्नाड का एकदम नया नाटक *रक्त कल्याण*, लोर्का का *द हाउस ऑफ़ बर्नाड अल्बा* (*दिन के अँधेरे*) और शेक्सपीयर का *जूलियस सीजर* था। इनमें *दिन के अँधेरे* को सबसे अधिक प्रशंसा मिली लेकिन आलोचकों और समीक्षकों ने महसूस किया था कि उनकी रंगभाषा में वह तेज़ नहीं था। रंगमंच आगे बढ़ गया था और उनका शिल्प पुराना पड़ रहा था। अलकाज़ी ने 1992 में संस्था शुरू किया लिविंग थिएटर। इसमें छात्रों को प्रशिक्षण दिया जाता और प्रस्तुति की जाती। अभिनेता को केवल अभिनय का प्रशिक्षण न देकर उसकी रुचियों, आदतों और तैयारी को भी प्रशिक्षित किया जाना चाहिए का विचार यहाँ भी प्रशिक्षण में मौजूद था। लिविंग थिएटर में *विरासत* (महेश एलकुंचवार,) *थ्री सिस्टर्स* (चेखव) *अ स्ट्रीटकार नेम्ड डिज़ायर* (टेनेसी विलियम्स), *द रॉयल हंट ऑफ़ द सन* (पीटर्स सैफ़र्स), *इफेजेनिया इन औलिस, एगामेममोन, एलेक्ट्रा, डेथ ऑफ़ अ सेल्समैन* (आर्थर मिलर) और यूजिन ओ नील के नाटक *डिजायर अंडर द एल्मस* की प्रस्तुति *बाल्दे टिब्बे* नाम से पंजाबी में की। इस दौर के रंगकर्म में समीक्षकों ने उल्लेख किया है कि समय आगे बढ़ गया था लेकिन अलकाज़ी साहब नहीं। रंग समीक्षक जावेद मलिक उल्लेख करते हैं कि 'नाटकों की सार्वजनिक प्रस्तुतियों को ठीक-ठाक दर्शकों ने देखा पर इनमें अलकाज़ी के पहले की प्रस्तुतियों जैसी जीवंतता और आकर्षण नहीं था। रानावि को छोड़ने के बाद, और उस अल्पावधि की निस्तेज वापसी के बीच अलकाज़ी भारतीय रंगमंच के पृष्ठ से ग़ायब होते गए। भारतीय रंगमंच अलग दिशा की ओर बढ़ता गया जो अलकाज़ी के समय से काफ़ी अलग थी।' सिनेमा और टीवी का प्रभाव भी इस दौर में बढ़ गया था अभिनेता रंगमंच को एक पड़ाव के तौर पर इस्तेमाल कर रहे थे ताकि वह अपने को तैयार करने के बाद

सिनेमा और टीवी की तरफ़ जा सकें जहाँ पर्याप्त अवसर थे। अलकाज़ी साहब को भी लगा कि कब तक वो अप्रशिक्षित अभिनेताओं को प्रशिक्षण देते रहेंगे ... और उनसे पेशेवर थिएटर की उम्मीद रखेंगे। आख़िरकार 'लिविंग थिएटर' को उन्होंने 1996 में बंद कर दिया। इसके लिए अलकाज़ी कहीं से फ़ंड नहीं लेते थे लेकिन प्रशिक्षुओं को स्कॉलरशिप देते थे। नाटक पर जो ख़र्चा होता वह भी अपनी जेब से भरते थे। 'लिविंग थिएटर' बंद करने के बाद वापस अलकाज़ी अपनी कला की दुनिया में तल्लीन हो गए जिसे उन्होंने रानावि छोड़ने के बाद त्रिवेणी आर्ट गैलरी में शुरू किया था। वहीं पर वो अपने छात्रों से मिलते-जुलते और सांस्कृतिक गतिविधियों में दर्शकों की भूमिका भी निभाते थे। कलाकृतियों की और तस्वीरों की दीर्घा लगाते। उनके पास औपनिवेशिक दुनिया की दुर्लभ तस्वीरों का ज़ख़ीरा था।

अपने छात्रों के बीच चचा नाम से जाने जाने वाले अलकाज़ी सख़्ती के लिए मशहूर थे, लेकिन उदार थे। 1967 में रानावि रंगमंडल से अलग होकर उनके छात्रों ने *दिशांतर* नामक समूह बनाया तो रंगमंडल की गठन की चिंता में होते हुए, नाराज़गी के बावजूद अलकाज़ी ने *दिशांतर* के लिए बादल सरकार के *तीसवीं शताब्दी* को *हिरोशिमा* नाम से निर्देशित किया। रंगमंडल के लिए निर्देशित किए मॉलियर के नाटक *कंजूस* के अधिकतर अभिनेता *दिशांतर* में चले गए तो उसे दिशांतर के तहत मंचित करते रहने की अनमुति दे दी। इब्राहिम अलकाज़ी का अपने छात्रों से संपर्क कभी नहीं टूटा। उनकी शुरुआती रानावि की छात्रा और प्रसिद्ध अभिनेत्री उत्तरा बावकर बताती हैं कि उनकी ख़राब तबीयत के बारे में जानकर अलकाज़ी साब ने उन्हें कुवैत से फ़ोन किया था। लिविंग थिएटर के दिनों के छात्र और आज के जाने माने अभिनेता सुशांत सिंह बताते हैं अलकाज़ी छात्रों की छोटी-मोटी ज़रूरतों का भी ख़याल रखते थे। जे एन कौशल भी ज़िक्र करते हैं त्रिवेणी आर्ट गैलरी में वह अपने छात्रों से मिलते रहते थे, उनकी प्रस्तुतियाँ भी देखते थे।

इब्राहिम अलकाज़ी ने रंगमंच को व्यापक दर्शक वर्ग से जोड़ने की कोशिश की और प्रॉसीनियम के वैकल्पिक स्पेस की तलाश की। मुंबई में भूलाभाई देसाई मेमोरियल इंस्टीटयूट और दिल्ली में कैलाश कॉलोनी के घर के पीछे का अस्थाई रंगमंच के साथ फ़िरोज़ शाह कोटला, पुराना क़िला, मेघदूत थिएटर जैसे रंगस्थल में नाटकों को लेकर गए जहाँ बड़ी संख्या में नाटक देखने दर्शक आए। रानावि की प्रस्तुतियों को शुरू से ही उन्होंने दर्शकों से जोड़ा। वह दर्शकों की अहमियत जानते थे और यह भी कि रंगमंच को लोकप्रियता हासिल करनी ही चाहिए। रानावि की रंग प्रस्तुतियों की भाषा इसलिए हिंदी थी क्योंकि हिंदी संपर्क भाषा थी ही, उसका व्यापक दर्शक वर्ग भी था। हिंदी को राष्ट्रीय रंगमंच की भाषा या रंगमंच की केंद्रीय भाषा बनाने में भी उनका अहम योगदान है। उन्होंने अपने दिल्ली आगमन के बाद और रानावि की स्थापना के बाद हिंदी भाषा की उम्दा प्रस्तुतियों से लगभग यह तय कर दिया कि हिंदी ही दिल्ली रंगमंच की केंद्रीय भाषा होगी। इब्राहिम अलकाज़ी दिल्ली जब आए तो यह उनको 'एक परम सांस्कृतिक रेगिस्तान' लगी जहाँ उनको सब कुछ शून्य से शुरू करना था। यहाँ के अंग्रेज़ी रंगमंच से वह बहुत प्रभावित नहीं थे। उनका स्पष्ट विचार था कि रंगमंच की भाषा अंग्रेज़ी रखने से इसका व्यापक दर्शक वर्ग कभी

तैयार नहीं हो पाएगा। क्योंकि अंग्रेज़ी एक छोटे से वर्ग की भाषा है और रंगमंच की निरंतरता के लिए इसे मध्य और निम्न वर्ग तक पहुँचना होगा जिसकी भाषा हिंदी या कोई भी क्षेत्रीय भाषा ही होगी। ग़ौर करने वाली बात यह है कि इब्राहिम अलकाज़ी बंबई से दिल्ली आते हैं जहाँ वह लगभग एक दशक तक मुख्यतः अंग्रेज़ी भाषा में

रंगकर्म कर चुके हैं। वे स्वीकारते भी हैं कि अंग्रेज़ी का उपयोगितावादी इस्तेमाल करेंगे ताकि दुनिया से जुड़े रह सकें लेकिन रंगकर्म की भाषा अंग्रेज़ी नहीं होगी।

अलकाज़ी रंगमंच के लिए कहते हैं कि यह हाँ-हाँ नहीं कर सकता, इसे संदेह करना चाहिए, प्रश्न करना चाहिए और अभियोग लगाना चाहिए। रंगमंच की सामाजिक भूमिका से इतर उन्हें कुछ भी स्वीकार्य नहीं। यद्यपि वे मानते हैं कि सामाजिक भूमिका का निर्वाह तभी हो सकेगा जब अपने युग की नब्ज़ को थामा जाएगा और यह तभी होगा जब आपको अन्य कलाओं, और अन्य विधाओं जैसे इतिहास, अर्थशास्त्र, दर्शन इत्यादि की जानकारी हो। रंगमंच को परिभाषित करते हुए अलकाज़ी कहते हैं 'रंगकर्म मनुष्य को साँस लेने के समान आवश्यक है। वह जीवन और मृत्यु के अर्थ खोजने, समाज में मनुष्य की भूमिका पहचानने और व्यक्ति के अंतरंग मानस संसार की थाह लेने का सामूहिक प्रयत्न है' और 'रंगमंचीय अनुभव मनुष्य के लिए स्तब्धकारी जीवनानुभव हो सकता है। यह एक त्रासद उद्घाटन हो सकता है या मनुष्य पर और उसके मसलों पर कटु व्यंग्य, या हास्य के ज़रिए चेतना पर हल्का दबाव या व्यंग्य का एक बड़ा आघात जो अभीष्ट समापन को क़रीब ले आए।' वे बताते हैं कि 'रंगमंच सत्य की शाश्वत

सिनेमा और टीवी का प्रभाव भी इस दौर में बढ़ गया था अभिनेता रंगमंच को एक पड़ाव के तौर पर इस्तेमाल कर रहे थे ताकि वह अपने को तैयार करने के बाद सिनेमा और टीवी की तरफ़ जा सकें जहाँ पर्याप्त अवसर थे। अलकाज़ी साहब को भी लगा कि कब तक वो अप्रशिक्षित अभिनेताओं को प्रशिक्षण देते रहेंगे ...

तलाश है अनजाने और नए इलाक़ों के ज़रिये जो रंगमंच को अपना जादू, उत्साह और भय प्रदान करता है। इस तरह रंगमंच जीवन को देखने का एक तरीक़ा है। जो स्वाभाविक सत्य के ख़िलाफ़ प्रश्न करता है, उसे रोकता है जिसे बहुत पहले स्वीकार कर लिया गया है अनुर्वर मान कर।' ऐसा कहते हुए वे ज़ोर देते हैं कि रंगमंच हमेशा जाने गए सत्य से परे जा कर नए सत्य की तलाश करता है और यह तलाश जीवन से जुड़ कर ही संभव है। रंगमंच अलकाज़ी के लिए जीवन के प्रति दृष्टिकोण है। 'सब शिल्प पद्धतियाँ समाज में मनुष्य के अस्तित्व के प्रति किसी दृष्टि से ही जुड़ कर सार्थक हो सकती हैं। ऐसी ही संपूर्ण दृष्टि

को मैं नाट्य दृष्टि कहूँगा। यह मनुष्य को अपने चारों ओर के संसार को रूप देने के समर्थक एक सक्रिय, सकारात्मक एवं निश्चयात्मक शक्ति मानती है।' रंगमंच की तारतम्यता बदलते हुए परिवेश से है इसलिए वह हमेशा बदलता रहता है। समय की धारा में पीछे मुड़ कर वह जीवन की अभिव्यक्ति नहीं करता, या अतीत के किसी रोमान को पुनर्जीवन नहीं देता, उसकी दृष्टि हमेशा वर्तमान पर टिकी होती है। अलकाज़ी निश्चयात्मक रूप में कहते हैं 'रंगमंच को हमेशा आधुनिक होना होगा अपने पीछे की परंपरा की पूरी समृद्धि अपने साथ लिए हुए। आधुनिक रंगमंच का केवल एक ही वैध प्रकार है। और इसे अवांगार्द रंगमंच कहा जाता है, जो रंगमच की मूल प्रवृत्ति है।' साफ़ है अलकाज़ी रंगमंच का लक्ष्य 'किसी स्थापित सत्य पर संदेह और युगीन सत्य की तलाश' निर्धारित करते हैं और इस परिप्रेक्ष्य में रंगमंच का कार्य बदलाव है यथास्थिति का पोषण नहीं। वे आधुनिक चेतना के विकास की ज़िम्मेदारी भी रंगमंच को देते हैं।

अलकाज़ी के लिए रंगमंच जीवन और तात्कालिकता से संपृक्ति के बिना अस्तित्वहीन जीवंतता रहित क़वायद भर है। इसी समझ के तहत वह रंगमंच की सामाजिक भूमिका को और अधिक सक्रिय करने की बात कहते हैं। 'मैं सोचता हूँ कि राजनीति और रंगमंच के बीच और सामाजिक स्थिति और रंगमंच के बीच बहुत ही क़रीबी रिश्ता है। मेरे अनुसार ज़रूरी है कि रंगमंच लोगों के जीवन को तराशने और अधिक लोगों के लिए सार्थक सरकार बनाने के लिए प्रगतिशील सोच बनाने में रंगमंच को अधिक सक्रिय भूमिका निभानी चाहिए।' इसलिए रंगमंच को जनता से जुड़ना होगा और जनता की भागीदारी भी रंगमंच में बढ़ानी होगी, सक्रिय भागीदारी। अलकाज़ी रंगमंच को जनता का रंगमंच बनाना चाहते थे न केवल कुछ जुनूनी लोगों का शौक़ भर। अलकाज़ी यह पहचान रहे थे कि रंगमंच और रंगकर्मी जब सामाजिक भूमिका का निर्वाह करने को अपनी ज़िम्मेदारी नहीं मानते तब वे अपनी चमक-दमक बढ़ाने के लिए रंगकर्म करते हैं और फिर एक नक़ली क़िस्म का रंगमंच विकसित होता है। इब्राहिम अलकाज़ी जीवन व रंगमंच के बीच एकता को सच्चे रंगकर्म के लिए अनिवार्य मानते हैं। इसके लिए वे बौद्धिक ईमानदारी और बौद्धिक एकाग्रता की अपेक्षा करते हैं जो रंगकर्मियों में हो और ऐसा प्रशिक्षण से ही आ सकता है।

स्वातंत्र्योत्तर रंगमंच में अपने समकालीन दिग्गजों — हबीब तनवीर, सत्यदेव दुबे और ब.व. कारंथ की तुलना में अलकाज़ी की रंगमंच पर उपस्थिति कम रही है लेकिन प्रभाव बहुत व्यापक रहा। रानावि का निदेशक रहते हुए उन्होंने अपने स्नातकों के माध्यम से भारतीय रंगमंच को निर्देशित किया। न केवल अभिनेता और निर्देशक तैयार किए, नाटककारों को नया नाटक लिखने के लिए प्रेरित किया और उन्हें मंच दिया। आख़िरी साँस लेने से बहुत पहले उनका संपर्क रंगमंच और कला की दुनिया से टूट चुका था लेकिन उनकी व्याप्ति बरक़रार थी। अलकाज़ी साहब ने भारतीय रंगमंच को सच्चे मायनों में आधुनिक और गंभीर बनाया। उनकी विरासत उनकी कृतियों और सबसे अधिक उनके छात्रों में सुरक्षित है। आज़ादी के बाद भारतीय रंगमंच के इतिहास का बड़ा हिस्सा अलकाज़ी और उनके छात्रों के रंगकर्म का इतिहास है।